जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में नेहरू तथा संसदीय लोकतंत्र विषय पर दसवें जवाहरलाल नेहरू स्मृति व्याख्यान के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति, श्री प्रणब मुखर्जी का अभिभाषण

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली : 18.01.2014

सारांश

स्वतंत्रता के दौरान भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना लम्बे उपनिवेशवाद से उभरते नए राष्ट्र के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। यद्यपि एक नव-स्वतंत्र राष्ट्र में संसदीय लोकतंत्र को एक बड़ा जोखिम माना गया था लेकिन नेहरू ने इस प्रक्रिया को सफल बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई। उनकी दूरदृष्टि ने अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त सीमित प्रतिनिधि सरकार को भारतीय नागरिकों के लिए अनुकूल जीवंत और सशक्त संस्थागत ढांचे में बदल दिया। नेहरू का, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा देश के शासन में जन-भागीदारी में दृढ़ विश्वास था। नेहरू के लिए लोकतंत्र और नागरिक स्वतंत्रता, आर्थिक और सामाजिक विकास करने का साधन ही नहीं बल्कि अपने आप में सर्वोच्च मूल्य और साध्य थे।

नेहरू के विचार में, विभिन्न सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति को स्थान देने वाला लोकतांत्रिक ढांचा ही भारत को एक सूत्र में रख सकता था। उनका यह भी मानना था कि हमारे देश के राष्ट्र-निर्माण के कठिन सर्जनात्मक वर्षों के दौरान एक सुदृढ़ और टिकाऊ संसदीय प्रणाली की स्थापना की जानी भी बहुत आवश्यक थी। नेहरू द्वारा प्रदान किए गए सुदृढ़ नेतृत्व और उदार मूल्यों के कारण संसदीय लोकतंत्र भारत में स्थापित हुआ और जीवित रहा। उनके द्वारा स्थापित चिरस्थाई नियमों, मूल्यों और परंपराओं ने भारत के लोकतांत्रिक संस्था को स्वरूप प्राप्त करने और कार्य करने में सक्षम बनाया। वर्षों के दौरान, संसद ने, एक संस्था के रूप में निरंतर बदलाव किए और नए नियम बनाए, जिससे वह आगे बढ़ी परंतु स्वतंत्रता के दौरान नेहरू द्वारा निर्धारित लोकतांत्रिक और वैज्ञानिक अभिरुचि के साथ कार्य करने की मजबूत विरासत ने इस संस्था को अनूठा बना दिया है।

मुझे आज नई दिल्ली के प्रतिष्ठित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में आकर प्रसन्नता हो रही है और मैं दसवें नेहरू स्मृति व्याख्यान देने के लिए निमंत्रित किए जाने पर सम्मानित अनुभव कर रहा हूं।

44 वर्ष पुराना जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय भारत और विदेश में एक 'अलग' तरह के विश्वविद्यालय के रूप में सुविख्यात है। इसे बौद्धिक रूप से अशांत, असीमित जिज्ञासु और मानसिक रूप से दृढ़ लोगों का घर माना जाता है। यह सर्वथा उपयुक्त है कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का मार्गदर्शक सिद्धांत विश्वविद्यालय की भूमिका के बारे में नेहरू की यह प्रसिद्ध उक्ति है कि "विश्वविद्यालय मानवता, सहिष्णुता, तर्क, विचारों की स्वतंत्रता और सत्य की खोज का प्रतीक होता है। यह सतत् उच्च उद्देश्यों की दिशा में मानव की प्रगति का प्रतीक है। यदि विश्वविद्यालय अपने कर्तव्य ठीक ढंग से निभाएं तो यह राष्ट्र और जनता के लिए बेहतर होगा"।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय देश के ऐसे पहले विश्वविद्यालयों में से है जिसने शिक्षण और शोध में अंत:विधात्मक पद्धति पर बल दिया है, सेमेस्टर, क्रेडिट और ग्रेडिंग प्रणाली, 100 प्रतिशत आंतरिक जांच और मूल्यांकन प्रणाली तथा परिवर्तनशील प्रवेश नीति आरम्भ की है। इसका शोध और पाठ्यचर्या जीवन सदैव सामाजिक उद्देश्य से परिपूर्ण तथा सामाजिक समस्याओं के प्रति प्रासंगिक रहा है। इसके अलावा, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय अधिनियम में कहा गया है कि यह विश्वविद्यालय "जिन सिद्धांतों के लिए जवाहरलाल नेहरू ने अपने जीवन काल के दौरान के लिए कार्य किया, यथा राष्ट्रीय एकीकरण, सामाजिक न्याय, पंथनिरपेक्षता, लोकतांत्रिक जीवनशैली, अंतरराष्ट्रीय सद्भाव तथा समाज की समस्याओं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण, उनके अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए" प्रयास करेगा।

इस विश्वविद्यालय के शिक्षकों और विद्यार्थियों की ऊंची गुणवत्ता और प्रतिष्ठा तथा इसकी स्थापना के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, मैंने अपने व्याख्यान के लिए 'नेहरू और संसदीय लोकतंत्र' विषय को चुनने का निर्णय लिया।

देवियो और सज्जनो,

पंडित जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत और इसकी संसदीय लोकतंत्र प्रणाली के प्रमुख निर्माता थे। नेहरू का संसदीय प्रक्रिया में अटूट विश्वास था, जो उनके लिए ऐसी जिम्मेदार और प्रतिसंवेदी राजनीतिक प्रणाली थी जो परामर्श और चर्चा के माध्यम से शासन करे।

नेहरू का विचारों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में पक्का विश्वास था। उनके लिए लोकतंत्र और नागरिक स्वतंत्रता, केवल आर्थिक और सामाजिक विकास करने का साधन ही नहीं बल्कि अपने आप में सर्वोच्च मूल्य, साध्य थे। उनके जीवनीकार प्रो. एस. गोपाल का कहना है कि उनकी 'लोकतांत्रिक मूल्यों' के प्रति दृढ़, बौद्धिक और नैतिक प्रतिबद्धता थी। नेहरू ने कहा था, "मैं किसी चीज के बदले में लोकतांत्रिक प्रणाली का त्याग नहीं करूंगा।"

इस प्रकार, भारत में पूर्ण संसदीय लोकतंत्र की स्थापना, लम्बे उपनिवेशवाद से उभरते नए राष्ट्र के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। नेहरू ने उस प्रक्रिया को संवारने में केंद्रीय भूमिका निभाई जिसके द्वारा अग्रेजों द्वारा प्रदत्त सीमित प्रतिनिधि सरकार को भारतीय नागरिकों की प्रतिभा के अनुकूल एक जीवंत और सशक्त संस्थागत ढांचे में बदल दिया गया। इसके अलावा, अस्थायी संसद (1950-1952), प्रथम लोक सभा (1952-1957), द्वितीय लोक सभा (1957-1962) तथा तृतीय लोक सभा (1962-1964) में सदन नेता के रूप में, नेहरू ने हमारी संसदीय संस्थाओं के निर्माण तथा स्वस्थ परंपराओं और नजीरों की स्थापना में सबसे अहम भूमिका निभाई।

संविधान की राह

विदेशी शासन से मुक्ति के एक हकीकत बनने से काफी पहले जवाहरलाल नेहरू ने 1936 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में घोषणा की थी कि भारत का अंतिम उद्देश्य 'एक लोकतांत्रिक राष्ट्र', 'पूर्ण लोकतंत्र' तथा 'नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था' की स्थापना करना है।

नेहरू ने भारत का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा की मांग को लोकप्रिय बनाया तथा 1937 के चुनावों में इसे एक केंद्रीय मुद्दा बनाया। अन्य देशों से अलग भारत का संविधान विदा हो रही औपनिवेशिक सत्ता ने नहीं बनाया था। इसके बजाय, भारतीय नेताओं ने दिसंबर, 1946 से जनवरी, 1950 तक संविधान सभा की बैठकें की और गंभीर विचार-विमर्श तथा चर्चा के बाद नए राष्ट्र के बुनियादी कानून बनाए।

दिलचस्प बात यह है कि 13 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा में नेहरू द्वारा प्रस्तुत 'उद्देश्य' प्रस्ताव में सरकार के संसदीय रूप का उल्लेख नहीं किया गया था। संविधान सभा में बहुत से वक्ताओं ने यह कहते हुए संसदीय प्रणाली अपनाने का तर्क दिया कि भारतीयों की अनेक पीढ़ियों को इसका अभ्यास है और इस सामूहिक अनुभव को अनदेखा नहीं किया जा सकता। परंतु दूसरे लोगों को इसमें संदेह था और उन्होंने पुरजोर ढंग से उसे व्यक्त किया। कुछ को ऐसी शासन व्यवस्था में बहुमतवादी निर्वाचक तंत्र बन जाने का डर था जो अत्यधिक विभाजित होती और उनकी प्राथमिकता निश्चित अवधि की कार्यपालिका थी। अन्य लोगों ने संसदीय मॉडल अपनाने को पश्चिम के प्रति 'दासतापूर्ण आत्मसमर्पण' बताया। संविधान सभा में गांधीवादी इसके लिए इच्छुक थे कि ग्राम गणराज्यों पर आधारित स्वदेशी प्रणाली अपनाई जाए परंतु उनके विचारों को संविधान के दूसरे खण्डों में समायोजित करने का प्रयास किया गया। तथापि, नेहरू इन तर्कों से प्रभावित नहीं हुए और उनका मानना था कि संसदीय लोकतंत्र हमारे इतिहास और परंपराओं के

अनुरूप है तथा यह भारत को विभिन्न प्रकार के विभाजक दबावों वाले अत्यधिक बहुलवादी समाज को एक संगठित और एकीकृत राष्ट्र बनाने में सक्षम है।

भारतवासियों की लोकतांत्रिक परंपराएं

नेहरू ने भारतीय समाज की प्रकृति तथा अनेक सहस्राब्दियों पुराने इसके लंबे इतिहास को ध्यान में रखते हुए, भारत के लिए शासन के सबसे उपयुक्त ढांचे की संकल्पना करने और विकास करने का प्रयास किया। नेहरू का कहना था कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को देश के विभिन्न हिस्सों में रहने वाले समृद्ध, विविधतापूर्ण संस्कृति और भाषायी विरासत वाले भारतीय लोगों की भावनाओं और आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर मजबूत बनाया जा सकता है। संविधान सभा में 'उद्देश्य' प्रस्ताव पेश करते हुए, नेहरू ने कहा था, "हम यहां जो भी शासन प्रणाली स्थापित करें, वह हमारी जनता की प्रकृति के अनुरूप हो और उन्हें स्वीकार्य हो।" उनके शब्दों में , "संसदीय संस्थाओं सहित हमारी सभी संस्थाएं अंततः देशवासियों के चरित्र, विचारों और लक्ष्यों की अभिव्यक्ति होती हैं। यदि वे लोगों के चरित्र और विचारों के अनुरूप हों तो मजबूत और स्थायी होती हैं। अन्यथा वह विखंडित हो सकती हैं।"

नेहरू के विचार में, भारत को राष्ट्र के रूप में संगठित रखने के लिए संसदीय लोकतंत्र आवश्यक था। इसकी विविधता और भिन्नताओं को देखते हुए केवल एक ऐसा लोकतांत्रिक ढांचा ही भारत को एकजुट रख सकता था जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई हो। उन्होंने कहा था, "यह बहुत सी वाजिब विविधताओं वाला इतना विशाल देश है जिसे तथाकथित 'शक्तिशाली व्यक्ति' को, लोगों और उनके विचारों को रौंदने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

लोगों को लोकतंत्र में शिक्षित करने की आवश्यकता

इसी प्रकार, नेहरू यथार्थवादी थे और यह जानते थे कि संसदीय लोकतंत्र कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे रातों-रात स्थापित किया जा सके। इसे विकसित और उन्नत होना होगा। इसे लोगों द्वारा आत्मसात् किया जाना होगा और उनकी राजनीतिक शिक्षा पर बहुत अधिक निवेश करने की जरूरत है। नेहरू ने देश के भीतर और बाहर सक्रिय विभिन्न ताकतों के निहितार्थ और अंतरराष्ट्रीय घटनाओं के बारे में लोगों को बताने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने संसद के भीतर और बाहर अपने भाषणों और संबोधनों के जरिए महत्त्वपूर्ण निर्णयों के पीछे तर्क के बारे में बताया।

नेहरू का मानना था कि सरकार के सभी कार्यक्रमों और नीतियों पर समुचित बहस होनी चाहिए, उन्हें समझा जाना और उनका मूल्यांकन होना चाहिए तथा तब उन्हें स्वीकार किया जाना चाहिए। उन्होंने प्रमुख मसलों पर सहमति बनाने का प्रयास किया ताकि लोग प्रेरित हों तथा राष्ट्र निर्माण

और इसकी स्वतंत्रता तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं की रक्षा के कार्य में शामिल हों। उनका पक्का यह विश्वास था कि व्यक्ति को लोकतांत्रिक शासनव्यवस्था में ही आत्मविकास का तथा दूसरों की सेवा करने का सर्वोत्तम अवसर मिल सकता है। लोकतंत्र आत्म-अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व को प्रोत्साहित करता है। नेहरू ने विषय की आगे व्याख्या की है, "किसी व्यक्ति को केवल मताधिकार प्रदान करके रचनात्मक ऊर्जा और स्वतंत्रता की भावना विकसित नहीं हो जाती।"

ऐसी प्रणाली जो उत्तरदायित्वपूर्ण और प्रतिसंवेदी हो

नेहरू मानते थे कि संसदीय लोकतंत्र में लोगों को एकजुट करने तथा उन्हें विकास और राष्ट्र निर्माण के कार्य में लगाने की क्षमता है। सरकार चौबीस घंटे लोगों के प्रति जिम्मेदार रहती है और वह हमेशा उनकी इच्छाओं और मांगों के प्रति प्रतिसंवेदी रहती है। संसद के द्वारा सरकार और लोगों के बीच एक नजदीकी संबंध स्थापित होता है। नेहरू के शब्दों में, "यह बहस करने, विचार-विमर्श करने और निर्णय करने का और उस निर्णय को स्वीकार करने का तरीका है भले ही आप उससे सहमत न हों।"

नेहरू का यह भी मानना था कि संसदीय लोकतंत्र, आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना में तथा संविधान की उद्देशिका में निर्धारित लक्ष्यों, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की प्राप्ति में सर्वोत्तम योगदान कर सकता है।

संसदीय शिष्टाचार का सम्मान

नेहरू संसद का अत्यंत सम्मान करते थे और अक्सर उन्हें लम्बी और उबाऊ बहसों के दौरान धैर्यपूर्वक बैठे हुए देखा जाता था जो उनके सहयोगियों और युवा सांसदों के लिए एक उदाहरण होता था। वह संसद में प्राय: बोला करते थे और इसे जनता तक अपने विचार पहुंचाने के एक मंच के तौर पर प्रयोग करते थे। कांग्रेस पार्टी के बहुमत के बावजूद, वह सुनिश्चित करते थे कि संसद हमेशा सभी लोगों की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करते। अपने जीवन के अंतिम कुछ महीनों के दौरान बीमार रहते हुए भी उन्होंने कोई भी सत्र नहीं छोड़ा और जब भी उन्हें बोलना होता था वह सदन की मर्यादा बनाए रखने के लिए खड़े होकर बोलने का आग्रह किया करते थे।

नेहरू के संसद सदस्यों के साथ बहुत मधुर संबंध थे। सांसदों के पत्रों का हमेशा व्यक्तिगत और तुरंत उत्तर दिया जाता था। लोक सभा अध्यक्ष के नेतृत्व में जब भी संसदीय शिष्टमंडल विदेशी यात्रा पर जाते थे तो वह लोक सभा अध्यक्ष के कक्ष में आकर उन्हें संबोधित किया करते थे। वह लोक सभा अध्यक्ष के पद का अत्यंत सम्मान करते थे और कहा करते थे, "अध्यक्ष को राजनीति के सभी विवादास्पद विषयों में सक्रिय भागीदारी से दूर रहना होता है। सारांश के तौर पर अध्यक्ष

स्वयं को न्यायाधीश की स्थिति में रखे।" सदन के अपने एक संबोधन के दौरान जब जब पीठासीन अधिकारी की आलोचना की जाने लगी तो, नेहरू ने पद की गरिमा नष्ट करने के प्रति सचेत किया। उन्होंने कहा, "मुद्दा कानूनी अधिकार का नहीं, बल्कि इसको करने में उपयुक्तता तथा वांछनीयता का है।"

नेहरू ने सदन में लोक सभा अध्यक्ष के पद की गरिमा बनाकर स्थायी मूल्यों की कुछ परंपराएं निर्धारित की। एक बार जब अध्यक्ष मावलंकर ने प्रधानमंत्री से उनके कार्यालय में मिलना चाहा था तो नेहरू ने जोर देकर कहा कि वह स्वयं अध्यक्ष के कक्ष में जाएंगे न कि अन्यथा। यह घटना नेहरू की विनम्रता और संसदीय परंपराओं के पालन और संस्थाओं के प्रति उनके सम्मान को दर्शाती है।

संसद को जानकारी प्रदान करना

नेहरू संसद के सदनों में महत्त्वपूर्ण विषयों पर खुलकर चर्चा को बढ़ावा देते थे। वह जनहित के नाम पर संसद को जानकारी न देने के बहाने को अच्छा नहीं मानते थे, और यदा-कदा उस जानकारी को देने के लिए हस्तक्षेप किया करते थे जिसे सम्बन्धित मंत्री द्वारा देने से इंकार किया गया था। वह रक्षा और विदेश नीति जैसे मामलों पर भी काफी सूचनाएं देने के लिए तैयार रहते थे। विदेश मंत्री के तौर पर, उन्होंने समय-समय पर अंतरराष्ट्रीय स्थिति पर विचार-विमर्श को एक परिपाटी बना लिया था और प्राय: किसी खास अंतरराष्ट्रीय घटना पर विचार करने के लिए स्वयं सदन में प्रस्ताव पेश करते थे। परिणामस्वरूप, भारतीय संसद में विदेश नीति संबंधी चर्चा न केवल भारत बल्कि बाहर दुनिया का ध्यान भी आकर्षित किया करती थी। दिल्ली में, विदेशी मामलों पर बहस का उत्सुकता से इंतजार किया जाता था तथा बहुत से राजनयिक और मीडिया ऐसी बहस के दिन दीर्घा में इकट्ठे हो जाया करते थे।

'विपक्ष' का महत्त्व

नेहरू यह जानते थे कि मजबूत विपक्ष न होने का अर्थ है, व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण खामी। वह यह भी महसूस करते थे कि पीछे बैठने वालों की बड़ी संख्या में अनुभव और स्वतंत्र विचारशीलनता की कमी के लिए उपचारी कार्रवाई जरूरी है।

नेहरू ने कम्यूनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध का विरोध किया जबकि वह इसकी नीतियों के खिलाफ थे। वह चाहते थे कि सामान्य विधिक प्रक्रियाओं द्वारा इसका सामना किया जाना चाहिए। वह कहा करते थे, "मैं नहीं चाहता कि भारत ऐसा देश बने जहां लाखों लोग एक व्यक्ति की हां में हां मिलाएं, मैं मजबूत विपक्ष चाहता हूं।"

नेहरू महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचार-विनिमय के लिए लगातार विपक्षी नेताओं से मिला करते थे। वह उन लोगों की सराहना करते थे तो अच्छे भाषण देते थे तथा अहम मुद्दों को उठाया करते थे। उनके

अधिकांश विपक्षी सदस्यों के साथ अच्छे व्यक्तिगत सम्बन्ध थे और वह उनके प्रति सौम्यता और सम्मान व्यक्त करने से कभी नहीं चूकते थे।

नेहरू हमेशा अपने मंत्रियों को खोजी प्रश्न पूछने और बहसों को प्रोत्साहित करने के लिए कहा करते थे। प्रख्यात सांसद प्रो. एन.जी. रंगा के शब्दों में, "नेहरू संसद से एक 'कामरेड' और मंत्रियों के लिए जरूरी मदद के रूप में बर्ताव करते थे। श्रीमती वॉयलेट अल्वा ने एक बार कहा था कि नेहरू बागी की तरह बोलते थे परंतु अपने पीछे वह कोई जख्म नहीं छोड़ा करते थे।"

अधिकार एवं विशेषाधिकार तथा प्रश्न काल

नेहरू, सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों की अक्षुण्णता और रक्षा की आवश्यकता का ध्यान रखते थे। उनका विशेष आग्रह रहता था कि सदन की गरिमा और प्रतिष्ठा हर हाल में बनाई रखी जानी चाहिए। उनका कहना था, "मुझे इस सदन की शक्तियों से ईर्ष्या है और मैं नहीं चाहूंगा कि कोई उन शक्तियों को सीमित कर दे।" वह प्रश्नकाल में बहुत दिलचस्पी लेते थे और लगभग हमेशा प्रश्नकाल के दौरान उपस्थित रहा करते थे। वह ज्यादातर प्रमुख मुद्दों पर बहस के दौरान बैठे रहते थे और ध्यान से सदस्यों को सुना करते थे। वह हस्तक्षेप करके किसी भी कठिन प्रश्न का जवाब दे दिया करते थे तथा सहजता से किसी मुद्दे पर बहस की समाप्ति अथवा निबटारा कर दिया करते थे।

चुनावों की अहम भूमिका

नेहरू को, मुद्दों को समझने और तर्कसंगत चुनाव करने की निर्धन, निरक्षर जनता की क्षमता पर पूरा विश्वास था। उन्होंने देश के विभाजन और परिणामस्वरूप सांप्रदायिक हिंसा या शरणार्थियों की आवाजाही को, चुनावों को स्थगित करने के लिए बहाने के तौर पर इस्तेमाल नहीं किया। इसके विपरीत, वह लोगों के बीच जाने के लिए अधीर थे और उन्हें इस बात का बुरा लगा था कि चुनाव समय पर नहीं हो सके। 1951-52 के प्रथम आम चुनावों के चुनाव अभियान में, नेहरू ने लगभग 25000 मील की यात्रा की और तकरीबन 35 मिलियन लोग यानी भारत की तब की आबादी के दसवें हिस्से को संबोधित किया। वह लगातार व्यस्क मताधिकार के महत्त्व तथा जम्मेदारी के साथ अपने मताधिकार को प्रयोग करने के कर्तव्य के बारे में लोगों को जागरूक किया करते थे।

प्रथम आम चुनावों में, लगभग दस लाख कार्मिक शामिल हुए। घर-घर जाकर किए गए सर्वेक्षण में 173 मिलियन मतदाताओं का पंजीकरण किया गया। इनमें से तीन चौथाई निरक्षर थे। चुनाव अक्तूबर, 1951 से मार्च, 1952 तक छह महीने तक चले और कुछ आजाद उम्मीदवारों के अलावा, 77 राजनीतिक दलों के 3772 उम्मीदवारों ने 489 निर्वाचन क्षेत्रों में चुनाव लड़ा। मानचेस्टर गार्डियन ने 2 फरवरी, 1952 को लिखा, "यदि आज तक किसी देश ने लोकतंत्र की ओर अंधकार में

छलांग लगाई है तो यह भारत था।" यह नेहरू में लोगों का विश्वास था जिसके कारण इतनी विशाल संख्या में लोगों ने प्रथम चुनावों में हिस्सा लिया।

संसदीय लोकतंत्र की चुनौतियां

यह सर्वविदित है कि नेहरू द्वारा ठोस बुनियाद रखने के बावजूद, भारत में संसदीय लोकतंत्र को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। हाल के वर्षों में, संसद की कारगरता के बारे में सवाल खड़े हुए हैं। कार्यवाहियों में निरंतर व्यवधान, उपस्थिति और परिचर्चा में कमी, अशिष्ट व्यवहार, संसद की बैठकों की संख्या में कमी तथा कोई चर्चा किए बिना बजट सहित महत्त्वपूर्ण कानूनों को गैर जिम्मेदाराना तरीके से पारित किए जाने की व्यापक आलोचना हुई है।

धीरे-धीरे, एक दल के प्रभुत्व वाली प्रणाली, बहुदलीय गठबंधन प्रणाली में बदल गई तथा त्रिशंकु संसद, अस्थायी गठबंधन तथा गहरे राजनीतिक मतभेद केंद्र और बहुत से राज्यों का परिदृश्य बन गए हैं। राजनीति में आपराधिक तत्त्वों का प्रवेश तथा भ्रष्टाचार भी भारी चिंता का विषय बन गया है। इसके अलावा, निरंतर सनसनीखेज समाचारों की तलाश में मीडिया का विस्तार तथा प्रभावी नागरिक समाज संगठनों द्वारा निभाई गई भूमिका, जैसा कि लोकपाल बिल के मामले में हुआ है, दर्शाती है कि भारतीय राजनीति में बहुत सी नई ताकतें सक्रिय हैं।

मैं, लोकपाल बिल पर तथा संसद द्वारा इसे अपनाने की कवायद पर कुछ विचार व्यक्त करना चाहूंगा। लोकपाल बिल का इतिहास उतार-चढ़ाव वाला रहा है। इसे लोक सभा में आठ बार पेश किया गया और अनेक स्तरों पर इस पर विचार किया गया। कई बार इसे पारित किया गया और अनेक समितियों को भेजा गया। अन्ततः, राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार के दौरान, मेरी अध्यक्षता में गृह मंत्रालय की संसदीय स्थायी समिति ने बिल की जांच की और इसे गृह मंत्रालय को पारित करने पर विचार के लिए अपनी अनुशंसा के साथ भेज दिया।

भारत की जनता 1970 के दशक से लोकपाल बिल को वास्तविकता में बदलना चाहती रही है। जब श्री अन्ना हजारे ने एक मजबूत लोकपाल के लिए अपना आंदोलन शुरू किया तो उन्हें समाज के व्यापक वर्ग से सहयोग मिला। कोई भी जिम्मेदार और सक्रिय सरकार लोकपाल बिल के समर्थन में भारी जन आंदोलन की अनदेखी नहीं कर सकती। इसलिए सरकार ने पांच वरिष्ठ मंत्रियों को, श्री अन्ना हजारे द्वारा चुने गए पांच प्रतिनिधियों के साथ बैठकर इसे संसद में प्रस्तुत करने के लिए मसौदे को अंतिम रूप देने के लिए तैनात किया।।

लोकपाल बिल के लिए आंदोलन ने दिखाया है कि नागरिक समाज भी विधि निर्माण में पहल कर सकता है। भारतीय राजनीति में पहली बार, विधि निर्माण संघीय अथवा राज्य की विधायिका के विशेषाधिकार से बाहर निकला है। नागरिक समाज ने दिखा दिया है कि विधि निर्माण प्रक्रिया में उनकी महत्त्वपूर्ण एवं कारगर भूमिका है तथा इससे संसदीय राजनीति में एक नया आयाम जुड़ा है।

नेहरू से सीख

मित्रो, ऐसी कौन सी बातें हैं जिन्हें हमें नेहरू से सीखना चाहिए?

नेहरू के लिए जनता सदैव राजनीतिक प्रणाली का केन्द्र थी। उनका मानना था कि नेता तथा राजनीतिक वर्ग का अस्तित्व जनता की सेवा के लिए है न कि इसका उलटा। लोकतंत्र में संसद, सुशासन तथा सामाजिक-आर्थिक बदलाव का बुनियादी उपकरण है। सांसदों को इसे यथोचित सम्मान देना चाहिए तथा साथ ही, इसकी क्षमता को समझना चाहिए। हमारे सांसदों तथा विधायकों को जनता का प्रतिनिधित्व करने का मौका मिलने पर इसे बड़े सौभाग्य तथा सम्मान की बात मानना चाहिए। सांसदों को हर समय जनता की समस्याओं के प्रति संवेदनशील तथा सक्रिय होकर कार्य करना चाहिए।

लेडी माउंटबेटन को 3 दिसम्बर, 1951 को लिखे एक पत्र में, नेहरू ने लोगों के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया तथा आधुनिक समय के सांसदों को इससे बेहतर सीख लेनी चाहिए। उन्होंने लिखा, "मैं जहां भी गया, मेरे कार्यक्रमों में विशाल जनसमूह एकत्रित हो गया और मैं उन्हें, उनके चेहरों, उनके पहनावों, मेरे प्रति तथा जो कुछ मैंने कहा उसके बारे में उनकी प्रतिक्रिया जानना मुझे अच्छा लगा। भारत की इस भूमि के पुराने इतिहास के दृश्य मेरे आगे उभरने लगते हैं और मेरे मस्तिष्क में पिछली घटनाओं के चित्र तैरने लगते हैं। परंतु अतीत से ज्यादा वर्तमान मेरे मन में भर जाता है और मैं इस जन-समूह के दिलो-दिमाग में झांकने की कोशिश करता हूं। दिल्ली सचिवालय में लंबे समय तक रहने के कारण, मैं भारतवासियों के साथ इस नए संपर्क से आनंदित होता हूं। यह सब एक रोमांचक कार्य बन गया है...।"

दूसरे, कार्यवाहियों में व्यवधान किसी भी परिस्थिति में सहन नहीं किया जा सकता और न ही किया जाना चाहिए। असहमति को शालीनता के साथ तथा संसदीय व्यवस्थाओं की सीमाओं और मापदंडों के अंदर व्यक्त किया जाना चाहिए। लोकतंत्र में बहस, असहमति तथा निर्णय शामिल होना चाहिए न कि व्यवधान।

दसवीं लोक सभा (1991-96) और उससे बाद व्यवधानों/स्थगनों के कारण बर्बाद हुए समय के आंकड़े उपलब्ध हैं। दसवीं लोक सभा का 9.95 प्रतिशत समय, ग्यारहवीं लोक सभा का 5.28 प्रतिशत समय, बारहवीं लोक सभा का 11.93 प्रतिशत समय, तेरहवीं लोक सभा का 18.95 प्रतिशत समय, चौदहवीं लोक सभा का 19.58 प्रतिशत समय तथा पंद्रहवीं लोक सभा (चौदहवें सत्र तक) का खेदजनक रूप से 37.77 प्रतिशत समय व्यवधानों की बलि चढ़ गया। यह अत्यधिक खेद की बात है कि व्यवधानों के परिणामस्वरूप बर्बाद होने वाले समय में पिछले दो दशकों से लगातार वृद्धि हो रही है।

तीसरा, अनुशासन और शिष्टाचार को हमेशा बनाए रखा जाना चाहिए तथा नियम, परंपराओं और शालीनता का पालन किया जाना चाहिए। संसदीय प्रथाएं, प्रक्रियाएं और परंपराएं सदन के व्यवस्थित और तेजी से कार्य संचालन के लिए होते हैं। एक बार जब एक सांसद का आचरण सदन की गरिमा के खिलाफ था तो नेहरू ने मामले की जांच के लिए एक संसदीय समिति गठित करने के लिए स्वयं एक प्रस्ताव पेश किया था, जबकि सांसद कांग्रेस का था।

नेहरू ने कहा था, "महोदय, मैं आपसे और इस सदन से निवेदन करता हूं कि हम कम से कम इसे स्वीकार कर सकते हैं और ऐसा करके इस सदन, देश को और भारत की अन्य विधानसभाओं को यह संकेत दे सकते हैं कि हमें मजबूती से ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिसकी संसद जैसी उच्च सभा तथा भारत की अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है।" समिति ने अंततः सदस्य के निष्कासन की सिफारिश की।

चौथा, राजनीतिक दायरों के बाहर परस्पर सम्मान और सहयोग होना चाहिए। अल्पमत को गरिमा के साथ बहुमत का निर्णय स्वीकार करना चाहिए। बहुमत को भी अल्पमत के विचारों का सम्मान करना चाहिए और काफी हद तक उन्हें समायोजित करना चाहिए। संसदीय प्रणाली के प्रभावी कामकाज का बुनियादी सिद्धांत यह है कि बहुमत शासन करेगा और अल्पमत विरोध करेगा, खुलासा करेगा और संभव हो तो अपदस्थ करेगा। परंतु यह प्रक्रिया संसदीय परंपराओं और प्रक्रियाओं के दायरे में होनी चाहिए।

प्रत्येक विधायक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कक्षों में होने वाली परिचर्चा की विषयवस्तु और गुणवत्ता उच्च कोटि की हो। विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्यों के रूप में, सांसद व्यक्तिगत रूप में अपने-अपने दलों की नीतियों से निर्देशित होते हैं। परंतु प्रतिस्पर्द्धात्मक राजनीति के परिणामस्वरूप देश के विकास की गति में कमी अथवा जनता की परेशानियों में बढ़ोतरी नहीं होनी चाहिए। विकास तथा जनकल्याण से संबंधित मुद्दे राजनीतिक बाधाओं से परे होते हैं। इस प्रकार के मुद्दों पर सहमति बनाना कठिन नहीं होना चाहिए।

और आखिर में, सांसदों को विधि निर्माण को अपना प्रथम और प्रमुख दायित्व समझना चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पूरे देश में विधि निर्माण के लिए दिया गया समय धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, 1952-57 की प्रथम लोक सभा की 677 बैठक हुई जिनमें 319 बिल पारित किए गए थे। इसकी तुलना में, 2004-2009 की चौदहवीं लोक सभा में 332 बैठकों में केवल 247 बिल पारित किए गए। विशेषकर, विधि निर्माण, धन और वित्त के मामलों में पूरी सतर्कता बरतनी चाहिए। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि संसद के अनुमोदन के बिना कार्यपालिका किसी भी प्रकार

का व्यय नहीं कर सकती। संसद द्वारा पारित कानून के बिना कोई कर नहीं लगाया जा सकता और संसद के अनुमोदन के बिना राज्य की समेकित निधि से कोई धन नहीं निकाला जा सकता है। मुझ सहित जो भी व्यक्ति किसी भी पद पर है, उसे उस पद पर बैठने के लिए जनता ने आमंत्रित नहीं किया है। हर-एक ने मतदाताओं के पास जाकर उनसे मत तथा समर्थन मांगा है। जनता ने राजनीतिक प्रणाली और चुने हुए लोगों पर जो भरोसा जताया है, उसे तोड़ा नहीं जाना चाहिए।

निष्कर्ष

नेहरू युग में संसदीय लोकतंत्र की बहुत सी अपनी विशेषताएं थी। नेहरू के महान नेतृत्व और कांग्रेस पार्टी की प्रतिष्ठा के कारण शासन व्यवस्था में स्थिरता और साख थी। सदन में राष्ट्रीय आंदोलन के ऐसे बहुत से सदस्य थे जिनकी राष्ट्र निर्माण में तथा इस कार्य में संसद की भूमिका के बारे में नेहरू के साथ एक सी परिकल्पना थी। कांग्रेसजनों में ही नहीं बल्कि विपक्ष में भी साझी राजनीतिक संस्कृति थी क्योंकि कांग्रेस के अंदर से ही बहुत से समूह उभरे थे। इस राजनीतिक संस्कृति के कारण, शुरुआती वर्षों के दौरान, संसदीय लोकतंत्र को सुव्यवस्थित करना सरल हो गया था।

नेहरू मानते थे कि लोकतंत्र मतदान, चुनाव या सरकार के राजनीतिक स्वरूप से कहीं ज्यादा गहरा है। उन्होंने कहा था, "परम विश्लेषण में, यह विचारों, कार्यों, आपके पड़ोसी और आपके प्रतिद्वंद्वी और विरोधी के साथ व्यवहार का तरीका है।"

संसदीय लोकतंत्र के माध्यम से, नेहरू ने हमें एक राष्ट्र के रूप में जोड़ा और हमें अपने विचारो में मजबूत और स्वावलंबी बनाया। नेहरू ने लिखा, "लोगों के लिए काम करना ही काफी नहीं है, असली बात है लोगों के साथ काम करना और आगे बढ़ना तथा उनमें अपने लिए काम करने का जज्बा भरना।"

नेहरू के अनुसार, संसद तभी तक प्रासंगिक है जब तक यह समय की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर विकसित गतिशील संस्थान बनी रहती है। नेहरू के शब्दों में, "तेजी से बदलाव के समय में, संसद की संस्था को तेजी से काम करना होगा।" वह यह स्पष्टता से स्वीकार करते थे कि, "सरकार की समस्याएं इतनी बढ़ गई हैं कि कभी-कभी यह संदेह होने लगता है कि क्या सामान्य संसदीय कार्यप्रणाली उनसे निपटने के लिए पर्याप्त है।" राजनीतिक दलों और हमारे देश के नेताओं को मिलकर यह विचार करना होगा कि हमारी संसद और विधान सभाओं के सुचारु संचालन को कैसे सुनिश्चित किया जाए और क्या कुछ मौजूदा नियमों को इस मकसद से संशोधित करने की जरूरत है।

नेहरू का एक सर्वोच्च जन प्रतिनिधि संस्था तथा 'राष्ट्र के महान अन्वेषण' के रूप में संसद के प्रति पूर्ण विश्वास था। नेहरू जानते थे कि संसदीय लोकतंत्र संसद सदस्यों पर महत्त्वपूर्ण दायित्व डालता है और यह शासन की सबसे कठिन प्रणाली तथा सबसे सख्त व्यावहारिक विज्ञान है। निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि, "हमारे देश की पृष्ठभूमि के कारण, और हमारे लोगों में लोकतांत्रिक भावना होने के कारण" भारत में संसदीय प्रणाली सफल हुई है।

नेहरू द्वारा एक सुदृढ़ और स्थिर संसदीय प्रणाली की स्थापना से भारत ने देश के राष्ट्र-निर्माण के कठिन सर्जनात्मक वर्षों के दौरान स्वयं को संगठित किया। भारत में संसदीय लोकतंत्र की सफलता, जिसे हम मात्र औपचारिकता से लेते हैं, असाधारण है और बहुत से नव-स्वतंत्र राष्ट्रों में यह शासन प्रणाली नहीं है। अन्य पूर्व औपनिवेशिक राष्ट्रों, जहां प्रथम पीढ़ी के राष्ट्रवादी नेताओं ने सारी शक्ति अपने पास रखी अथवा जहां बाद में सैन्य शासकों की सत्ता रही, के उदाहरण इस संबंध में नेहरू की उपलब्धियों से बहुत राहत पहुंचाते हैं।

भारत को ब्रिटिशकाल से विरासत के रूप में संस्थाएं प्राप्त हुई और उन्होंने उन्हें अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ढाला और जीवन शैली के तौर पर सक्रिय और प्रभावी संसदीय संस्थाएं दृढ़ता से स्थापित की। भारत में संसदीय लोकतंत्र की मजबूती से स्थापना और उसका पल्लवन काफी हद तक नेहरू द्वारा प्रदान किए गए नेतृत्व के कारण हुआ। प्रो. एस. गोपाल के शब्दों में, "विकट विपरीत परिस्थितियों में प्राप्त—व्यस्क मताधिकार, सम्प्रभु संसद, मुक्त प्रेस, एक स्वतंत्र न्यायपालिका—नेहरू के अत्यंत अविस्मरणीय योगदान हैं।" एक बार जब उनसे पूछा गया कि भारत को उनकी विरासत क्या होगी, तो नेहरू ने उत्तर दिया, "उम्मीद है, चालीस करोड़ लोग, जो स्वयं शासन करने में समर्थ हों।"

तथापि, हमारे सामने जो प्रश्न खड़ा है, वह यह है कि हम आधुनिक काल के भारतीय किस प्रकार उस विरासत पर खरे उतर सकते हैं और उसे हकीकत बना सकते हैं। मेरा विश्वास है कि इस विशिष्ट विश्वविद्यालय के संकाय सदस्य और विद्यार्थी जैसे विद्वान संसदीय लोकतंत्र के संदर्भ में नेहरू के आदर्शों और उनके कार्यों को परिचर्चा के केंद्र में लाने में प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। जैसे-जैसे संसदीय चुनाव नजदीक आ रहे हैं, यह विश्वविद्यालय, नेहरू काल के जज्बे तथा परिपाटियों को पुन: स्थापित करने के लिए एक अनुकूल परिवेश तैयार करने के लिए बौद्धिक दृष्टिकोण तैयार करने में अग्रणी भूमिका निभा सकता है।

जैसा कि मैंने पिछले स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर, राष्ट्र को अपने संबोधन में कहा था, हर-एक चुनाव को अधिकाधिक सामाजिक सौहार्द, शांति तथा समृद्धि की ओर हमारे देश की यात्रा में

अत्यंत महत्त्वपूर्ण पड़ाव बनना चाहिए। लोकतंत्र ने हमें दूसरा स्वर्ण युग पुन: सृजित करने का अवसर प्रदान किया है। हमें इस असाधारण अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

धन्यवाद,

जय हिंद!